International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 6.972 Volume 11, Issue 1, Jan 2024
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

हिंदी उपन्यासों में विस्थापन के राजनीतिक सरोकार

सरोज देवी शर्मा, शोधार्थी
पीएच.डी. विषयः हिंदी
डॉ. शिव चरण शर्मा, शोध निर्देशक
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ राजस्थान।

शोध सार

लोकतंत्र को बनाने और उसे बनाये रखने में साहित्यकार की विशिष्ट भूमिका होती है। स्वतंत्रता प्राप्ती से पूर्व के साहित्य की भूमिका निर्विवाद हैं हर देश का साहित्य वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पक्षों से प्रभावित होता है। और इसकी तस्वीर वहाँ के साहित्य में परिलक्षित होती है। स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पूर्व लोकतंत्र और स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतंत्र में बहुत बदलाव आ चुका है। आज भारत में स्वतंत्र लोकतंत्र का स्पष्ट प्रभाव साहित्य में देखने को मिलता है। चूंकि स्वतंत्रता के पश्चात् साहित्यकारों की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हुई है। सामाजिक एवं राजनीतिक भटकाओं और भारतीय जनता के सपनों में बाधक बने तत्वों को साहित्य का विषय बनाकर साहित्यकारों ने इस पर अपनी भरपूर लेखनी चलाई है। ''साहित्यकारों का लोकतंत्र समता, स्वाधीनता और बंधुत्व पर आधारित होता हैं एक ऐसे संवेदनशील लोकतंत्र की स्थापना साहित्यकारों का उद्देश्य रहा है, जो शोषणविहीन हो, जहाँ जाति, रंग प्रांत एवं धर्म के नाम पर किसी प्रकार के भेदभाव न हो। ऐसे लोकतंत्र में आम–आदमी के सपने फलीभूत होंगे।''

मूल शब्द –विस्थापन के राजनीतिक सरोकार

प्रस्तावना

आज के इस लोकतंत्र में हर क्षेत्र में परिवर्तन हुए हैं और साहित्य में भी, किन्तु हर युग में आए परिवर्तन को स्वीकार करते हुए साहित्य आज भी अपनी प्रतिष्ठा विशेषता के साथ समृद्ध है, किन्तु आज के साहित्यकारों के समक्ष विभिन्न चुनौतियाँ हैं जिनमें प्रमुख है राष्ट्र मे व्याप्त भ्रष्टाचार और इस भ्रष्टाचार का प्रभाव देश और समाज के साथ–साथ साहित्य में भी दृष्टिगोचर है। चूंकि साहित्य का उद्देश्य मानवता की रक्षा करना है इसी अर्थ में कहा गया है साहित्य मनुष्यता का प्रहरी है। लोकतंत्र में साहित्यकार का महत्वपूर्ण योगदान होता है, वह मनष्यता की सभी लड़ाइयाँ अपनी पूरी शक्ति के साथ लड़ता है।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

''हर युग का साहित्य अपने युग की यही गवाही देता हैं, इक्कीसवीं सदी को हमें भी यही गवाही देनी हैय इसलिए हमारे उत्तरदायित्व और अधिक व्यापक है–उन्हें पूरा करके ही हम सच्चे मनुष्य और सच्चे साहित्यकार बने रह सकते है।''

वर्तमान में लोकतंत्र शासन की एक प्रणाली मात्र बनकर रह गई है। इसका स्वाभाविक विकास जीवन–शैली के रूप में आज भी परीलक्षित है। ''जनतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसका ढाँचा विधि–समाज को गढ़ता है लेकिन जिसकी आत्मा सांस्कृतिक–समाज के गठन की अतृप्त आकांक्षा रखती है। राजनीतिक जनतंत्र को विधि–समाज के गठन और शासन की एक शैली तक ही सीमित रखना चाहती है जब कि साहित्य जनतंत्र को सांस्कृतिक–समाज के रूप में हासिल कर इसे जीवन की एक शैली के रूप में विकसित करना चाहता है।''1 अपने ढाँचागत स्वरूप में उपलब्ध वर्तमान लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें घास से लेकर घोड़े तक आश्वासन होता हैं। स्पष्ट है कि बहुमत ही लोकतंत्र का प्राणधार होता हैं

मानव मन में तरंगित होने वाली ललित भावनाओं और अनुभूतियों की शब्दों में सार्थक अभिव्यक्ति ही साहित्य है। यह मानव मन की कलापूर्ण–रमणीय अभिव्यक्ति है। ''साहित्य का जन्म और विकास मनुष्य के रूप में पशु के कायांतरण के साथ–साथ उसकी चेतना, भावना, आकांक्षा के मानवीय पक्ष के जन्म और विकास से भी संबंधित है। मनुष्य के मनुष्य बनने की प्रक्रिया और साहित्य की सृजन प्रक्रिया में कहीं न कहीं भिन्न–भिन्न संबंध है। दरअसल पशु से मनुष्य बनने की संपूर्ण संघर्ष–यात्रा का भाव–साक्षी साहित्य रहा है। मनुष्य के सुख–दुःख में उसका वास्तविक भाव–सहचर साहित्य ही होता हैय हमारे पास जो साहित्य आज उपलब्ध है वह स्वभावतः एक स्तर पर विकसित मनुष्य का ही साहित्य है। उसका ज्ञात, लिखित और एकत्रित इतिहास भी उसी विकसित मनुष्य का इतिहास है।''2

स्पष्ट है कि ज्ञान–राशि का संचित कोश ही साहित्य है। साहित्य मानव की अनुभूति के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करता है और पाठकों एवं श्रोताओं के हृदय में एक अलौकिक आनंद की अनुभूति उत्पन्न कराता है। किसी भी देश, जाति और वर्ग को जीवंत रखने का, उसके अतीत रूपों को प्रकट करने का एकमात्र साक्ष्य साहित्य ही होता है।

लोकतंत्र को स्थापित करने और उसे बनाए रखने में साहित्यकार की विशिष्ट भूमिका होती है। लोकतंत्र और साहित्य के संबंधों के विभिन्न स्तर और आयाम का अवधारणात्मक अध्ययन और मानव संबंध के विभिन्न संदर्भ में उनका पूरा विवेचन आज के साहित्य विमर्श की अनिवार्य जरूरतों में से एक महत्वपूर्ण जरूरत है। स्वतंत्रता आंदोलन के वक्त लिखे गए राष्ट्रीय–चेतना से पूर्ण साहित्य की भूमिका निर्विवाद है।

स्पष्ट है कि किसी भी देश का साहित्य वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पक्षों का यथार्थ चित्रण होता है। हमारे भारत में स्वाधीनता के पश्चात हिन्दी, साहित्यकारों की भूमिका

अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई। जन–जीवन के सपनों में बाधक बने तत्वों और सामाजिक एवं राजनीतिक भटकावों को साहित्यकारा ने जीवंत रूप में साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। अपने युग को चित्रित करने तथा सामाजिक–राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण कार्य हिन्दी साहित्यकारों ने किया है।

आज के लोकतंत्र और साहित्य पर विचार–विमर्श करना वर्तमान युग में आए परिवर्तन को देखते हुए अनिवार्य हो गया हैं ''जनतंत्र और साहित्यकार ऐसा आवश्यक और महत्वपूर्ण विषय है कि जिस पर विचार करना आवश्यक है। किसी विषय का महत्वपूर्ण होना उसकी जीवंतता का निदर्शन करता है। जीवंतता समाज सापेक्ष है, इसलिए समाज के अन्य विषयों के साथ जनतंत्र और साहितयकार पर विचार करना हमारे अपने सामाजिक सरोकारों की गवाही देता है। इस विषय पर कई प्रकार से विचार हो सकता है। लेकिन सबसे अधिक जरूरी मैं यह मानती हूं कि जनतंत्र और साहित्यकार के परस्पर संबंधों पर बातचीत की जायें और जनतंत्र में साहित्यकार की भूमिका तय की जाये। वास्तव में ये ऐसे विषय है कि जिन पर लंबे समय से बहस चल रही है, परन्तु कोई निश्चित निष्कर्ष हमारे सामने नहीं आ पा रहे हैं।''3

वर्तमान में साहित्यकार पर बहुत अधिक जिम्मेदारी है, क्योंकि वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक एवं जनता की विचारधारा को साहित्यकार ही अपनी लेखनो के माध्यम से विस्तृत और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर सकता है और साहित्य के माध्यम से ही जन–जन तक वर्तमान समय में व्याप्त सामाजिक, राजनैतिक विचारधारायें गंभीरता एवं स्पष्टता के साथ पहुँचती है। जनतंत्र की पहचान जनता के सुख–दुखों से होती है। आज भी भारत में स्वाधोनता की इतनी सदी गुजर जाने के बाद भी लोग जनतांत्रिक अधिकारों के लिए तरस रहे है। आज की भारत में गरीब और अमीर के बीच की खाई बहुत गहरी और चौड़ी है। बहुत बड़ी आबादी निरक्षर है और ऐसे हालात में हम निरक्षर जनता से यह कहें कि वे स्वतंत्र लोकतांत्रिक देश के निवासी है, और उन्हें अपने जनतांत्रिक अधिकारों के लिए सजग रहना चाहिए यह सरासर गलत है।

फणीश्वर नाथ रेणु ने अपने प्रख्यात उपन्यास ''मैला आंचल'' में कहा था कि ''गरीबी और जहालत दो ऐसी बीमारी हैं, जिन्हें दूर करना बेहद जरूरी है।'' ये बीमारियाँ कितनी दूर तक जा सकती है यह हम सब समझ सकते हैं। निर्धनता, जातिवाद, स्त्री शोषण, सामाजिक वैमनस्य, प्रांतवाद, सांप्रदायिकता, निरक्षरता ऐसे अनेकों चुनौतियाँ का सामना आज भारतीय जन–मन को करना पड़ रहा है। इन समस्याओं के साथ हम किस प्रकार आज के लोकतंत्र में अपने को स्वतंत्र समझे और किस प्रकार इन समस्याओं से मुकाबला करें? ऐसे विषयों पर साहित्यिक रचना करना साहित्यकार के लिए एक बड़ी चुनौती है।

प्रेमचंद ने अपनी प्रसिद्ध उपन्यास ''गोदान'' में जिस जिंदगी से परिचय कराया था, वह आज के समय में किस हद तक बदली है, इस बात से

हम अंजान नहीं है। सरकारों के बड़े–बड़े दावों के बावजूद गरीबी की समस्या हमें लगातार परेशान कर रही है। हम सिर्फ ''भारत उदय'' और ''जय हो'' के नारे ही सुनते रह जाते हैं विभिन्न सरकारें रोजगार गारंटी योजना, गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को आवासीय प्लाट, सस्ते आटा–दाल आदि की आपूर्ति आदि जैसी योजनाओं पर अरबों रुपयों खर्च कर रही है। यह पैसा सरकारी खजाने में करदाता की कमाई के हिस्से के रूप में आया है। यह देखना उचित होगा कि गरीबी दूर करने की सरकारों की कोशिशें वास्तव में कितनी सही और कामयाब रही हैं।''4

स्पष्ट है कि सरकार द्वारा विकास पर खर्च किया जाने वाला पैसा सही पात्रों तक पहुँचते–पहुँचते आधे से कम रह जाता है और कई स्थानों पर यह पैसा पात्रों तक पहुँच ही नहीं पाता। इसलिए सरकार की अधिकांश योजनाएँ कागजी बनकर रह गई हैं। स्वाधीनता के पूर्व हम भारतीय अंग्रजों के गुलाम थे इसलिए आत्याचार, शोषण का शिकार हुए, किन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो स्वतंत्र भारत में रहते हुए भी हम अपने ही चुने हुए सरकार के भ्रष्टाचार के शिकार हैं। स्वतंत्रता के पूर्व लोगों के मन में यही आस थी कि अंग्रेजों को भगाकर हम अपनी सरकार बनाएँगें जिसमें जिस सरकार में हमारे अपने भाई और हम राज करेंगे, जिसमें हर प्रकार कि स्वतंत्रता सभी को प्राप्त होगी, कोई किसी का हक नहीं मारेगा।

हमारी अपनी सामूहिक शक्ति शासन को चलायेंगी स्वतंत्र भारत का निर्माण होगा, किन्तु आज आजादी के इतने वर्षों बाद हम सब देख रहे हैं कि यह लोकतंत्र किस हद तक जनता का बना रह सका है। आज के लोकतंत्र के बारे में बस यही कह सकते हैं–

'' मजबूर निर्धन, निरक्षर, बदहाल लोगों कोखूबसुरत ख्वाब दिखाकर बहलाना बहुत आसान हैऔर यही सिद्धांत आज के लोकतंत्र की जान है।''

रघुवीर सहाय की कविताओं में आज के लोकतंत्र की स्पष्ट छवि प्रस्तुत की गई है। वैसे तो स्वतंत्रता प्राप्ति के आसपास ही रघुवीर सहाय ने लिखना शुरू किया था। उस समय में साहित्य में प्रगतिवाद से भिन्न एक नई प्रणाली के उदय की सुगबुगाहट हवा में थी। उस दौर में लिखी गई रघुवीर सहाय की कविताएँ उस समय के सामाजिक राजनीतिक पक्षों का स्पष्ट उद्घाटन करती है। साथ ही आज के लोकतंत्र का भी स्पष्ट उद्घाटन उनकी कविताओं में दृष्टिगोचर है। उससे स्पष्ट होता है कि स्थिति ज्यों की त्यों है बहुत से परिवर्तन होते हुए भी जनता की पीड़ा में कोई परिवतन नहीं हो पा रहा है।

आज के अखबार को ही ले लीजिए ''अखबार जिन्हें लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है, स्वयं लोकतंत्र की हत्या की साजिश में शामिल है और इस क्रूर यथार्थ को हम उस समय से कहीं ज्यादा कटु रूप में आज अनुभव कर सकते है।''5 रघुवीर सहाय का काव्य संग्रह ''आत्महत्या के विरूद्ध''' लोकतंत्र के क्षरण की अभिव्यक्ति का दस्तावेज है तो वही ''हंसो, हंसो, जल्दी हंसो'' उस क्षरण के कारण बढ़ते जा रहे जन आक्रोश को दबाने के लिए शासक वर्ग द्वारा धीरे–धीरे की जा

रही लोकतंत्र की हत्या का दस्तावेज है। ''आत्महत्या के विरूद्ध'' में संग्रहीत कविता ''एक अधेड़ भारतीय आत्मा'' में कवि ने कहा था–

''जो मुझसे नहीं भरा
शत्रु वह समाज में मृत्यु के नए प्रकार
खोता रहेगा।
अत्याचार अगले कुछ वर्षों में
और भी अनायास होगा
विद्रोह और लड़ाईयां।

रघुवीर सहाय की ये दोनों भविष्यवाणियाँ दुर्भाग्य से सही साबित हुई और अपनी अगली कविता ''हंसो, हंसो जल्दी हंसो' में उन्होंने सत्ता की क्रूरता का नग्न रूप प्रस्तुत किया है। कहने की जरूरत नहीं है कि साहित्य की जरूरत आज पहले से कही ज्यादा ही है।

''साहित्य का उद्देश्य मानवता की रक्षा करना है इसी अर्थ में कहा जाता है कि साहित्य मनुष्यता का प्रहरी है जो सत्ता मनुष्यता की समाप्त करने का षडयंत्र रच रही है और उसे संवेदनहीन बना रही है, साहित्यकार उस सत्ता के विरोध में उठ खड़ा होता है। वह सत्ता के प्रलोभन में नहीं आता–चाहे वह प्रलोभन पद–प्रतिष्ठा के हो या धन के।''6

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि साहित्यकार का जनतंत्र व्यापक होता है, वह मनुष्यता की सभी लड़ाइयों को अपनी पूरी शक्ति के साथ लड़ता है। प्रेमचंद ने इस संदर्भ में कहा था कि ''साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।'' किन्तु आज के लोकतंत्र में साहित्यकार की मनोवृत्ति बदल चुकी है। साहित्यकार साहित्यिक पुरस्कार पाने, पद पाने, अर्थ पाने तथा अन्य लाभ के लिए साहित्यिक रचना कर रहा है। अपने कर्तव्य उद्देश्य से महकते हुए व्यर्थ का श्रम कर रहा है। आज निकलने वाली साहित्यिक पत्रिकाओं से ज्ञात होता है कि सचमुच कुछ मात्रा में ही उत्कृष्ट साहित्यकार और साहित्य है। वरना यह स्पष्ट है कि किस प्रकार विभिन्न प्रतिष्ठानों से निकलने वाली पत्रिकाएँ किस प्रकार साहित्यकार के समक्ष आने वाली चुनौतियों तथा जनता के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई को कुंठित कर रही है।

आज के लोकतंत्र में एक प्रभावी लेखक किस प्रकार धीरे–धीरे श्रीहीन हो गया यह देखने को मिल रहा है। साहित्यकार को आज सजग रहकर चुनौतियों से ना घबराते हुए डटकर उसका सामना करने की आवश्यकता है, क्योंकि साहित्यकार सदैव विरोध में खड़ा होता है इसलिए उसकी आवाज ताकतवार होती है। ''हर युग का साहित्य अपने युग की साही गवाही देता है, इक्कीसवीं सदी को हमें भी यही गवाही देनी है, इसलिए हमारे उत्तरदायित्व और अधिक व्यापक है–उन्हें पूरा कही हम

सच्चे मनुष्य और सच्चे साहित्यकार बने रह सकते हैं– यह बात केवल याद करने की ही नहीं, जीवन में उतारने की है।''7

संदर्भः

1.कोलख्यान प्रफुल्ल, साहित्य, समाज आर जनतंत्र आनंद प्रकाशन, कोलकाता,प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 2
2.वहीं पृ. 14
3.पालीवाल शोभा, लोकतंत्र और साहित्यकार, साहित्यागार, जयपुर, संस्करण–2002, पृ. 7
4.सुराना पी.के., लोकतंत्र की सबसे बड़ी चुनौती, माई इंडिया डाट कॉम, मार्च 21, 2011
5.पारख जवरीमल्ल, हिन्दी साहित्य मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन, अनामिका पब्लिसशर्स, नई दिल्ली, 2007 पृ. 152
6.पालीवाल शोभा, लोकतंत्र और साहित्यकार साहित्यगार, जयपुर, संस्करण–2002, पृ. 11